१२

दयानन्द सरस्वती का

जन्मचरित्र

ऋषि दयानन्द की आत्मकथा : ऐतिहासिक विवरण

भारतीय धार्मिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण के सूत्रधार स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने युग के अद्वितीय महापुरुष थे। उनके विचारों का प्रभाव उनके जीवन काल में केवल स्वदेश तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु इंगलैण्ड, जर्मनी तथा अमेरिका तक उनकी ख्याति का प्रसार हुआ। ऐसे युग-प्रवर्तक महापुरुष का जीवन निश्चय ही समग्र मानव जाति के लिये प्रेरणादायी सिद्ध हो सकता है, यह अनुभव कर स्वामी जी के जीवन-काल में ही उनके जीवन-वृत्त को लेखबद्ध करने का प्रयास किया गया था। स्वामी जी ने स्वयं भी अपने एक व्याख्यान में आत्मकथन के रूप में स्व-जीवनवृत्त की कुछ चर्चा की थी। चैत्र शुक्ला पञ्चमी[१] १९३२ वि० तदनुसार १० अप्रैल १८७५ ई० को बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना, करने के पश्चात् वे पूना गये। वहाँ न्यायमूर्त्ति महादेव गोविन्द रानडे तथा अन्य महाराष्ट्रीय भक्तों के आग्रह पर उन्होंने बुधवार पैठ के भिड़े के बाड़े में एक व्याख्यान-माला प्रस्तुत की। इस व्याख्यानक्रम की अन्तिम वक्तृता ४ अगस्त १८७५ को हुई जिसमें श्री महाराज ने अपने जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं का उल्लेख किया। कालान्तर में **उपदेशमञ्जरी** या **पूना प्रवचन** के नाम से जब स्वामी जी के ये १५ भाषण मराठी से हिन्दी भाषा में अनूदित होकर प्रकाशित हुये[२] तो काशी शास्त्रार्थ (१६ नवम्बर १८६९ ई०) तक का प्रामाणिक जीवन-वृत्त स्वयं स्वामी जी के श्रीमुख से कथन किया हुआ ही, संसार को उपलब्ध हो गया।

आत्म-कथन प्रस्तुत करने का एक अन्य अवसर उन्हें तब मिला जब

---

१. पुराने उपलब्ध प्रमाणों से आर्यसमाज की स्थापना तिथि पञ्चमी ही सिद्ध होती है। यद्यपि स्थापना चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को हो गई थी, परन्तु उस दिन सत्संग नहीं हो पाया था, अत: आगामी प्रथम शनिवार चैत्रशुक्ला पंचमी को आर्यसमाज का प्रथम सत्संग हुआ था। इसी की ओर ऋषि जी ने संकेत किया है। उसी पत्र के आधार पर पंचमी तिथि मान ली गई है।

२. हिन्दी अनुवाद पं० गणेश रामचन्द्र तथा महाशय श्री निवासराव ने पं० लेखराम की प्रेरणा से किया।

थियोसोफिकल सोसाइटी के प्रवर्तकों में से एक कर्नल एच० एस० आल्काट ने अप्रैल १८७९ ई० में स्वामी जी से अपना आत्मकथन लेख-बद्ध कर थियोसोफिस्ट पत्र में प्रकाशनार्थ भेजने का आग्रह किया। कर्नल के इस अनुरोध को स्वीकार कर स्वामीजी ने अपने नर्मदा-तट भ्रमण तक का वृत्तान्त तीन किस्तों में लिख कर थियोसोफिस्ट में प्रकाशनार्थ भेजा। मैडम एच० पी० ब्लैवेट्स्की इस पत्र की सम्पादिका थीं। अत: उन्हीं के द्वारा सम्पादित होकर यह आत्मकथन अंग्रेजी अनुवाद के रूप में थियोसोफिस्ट के तीन अंकों में प्रकाशित हुआ। पण्डित लेखरामजी के अनुसार यह सामग्री उक्त पत्र के नवम्बर व दिसम्बर १८८० के अंकों में छपी थी, परन्तु पण्डित भगवद्दत्त जी ने थियोसोफिस्ट के मूल अंकों को देखकर यह निश्चय किया कि यह आत्म-वृत्तान्त अक्टूबर १८७९, दिसम्बर १८७९ तथा नवम्बर १८८० के अंकों में प्रकाशित हुआ है।[१] इन अंकों में स्वामी जी का यह आत्मकथन निम्न प्रकार से छपा[२]—अक्टूबर १८७९ जन्म से लेकर ऋषिकेश यात्रा पर्यन्त (१९११ वि०) पृ० ९ से १२, दिसम्बर १८७९ टिहरी से लेकर जोशी मठ यात्रा पर्यन्त (१९१२ वि०) पृ० ६६, से ६८, नवम्बर १८८० बद्रीनारायण से नर्मदा-तट पर्यन्त (१९१६ वि०) पृ० २४ से २६।

जिस समय स्वामीजी ने आत्म-वृत्तान्त को प्रकाशन के लिये थियोसोफिस्ट में भेजा उसी समय उसकी दो प्रतिलिपियाँ दो आर्य पुरुषों ने करली थीं। एक प्रतिलिपि श्री मथुराप्रसाद जी मंत्री आर्यसमाज अजमेर[३] तथा दूसरी पंडित छगनलाल श्रीमाली भूतपूर्व कामदार मसूदा (जिला अजमेर) के पास थी। जब श्री महाराज की जीवनी के तथ्यों का संग्रह करते हुये पंडित लेखराम अजमेर आये थे तब उन्होंने उक्त दोनों प्रतियों को देखा था तथा उन्हीं के आधार पर स्वसंगृहीत महर्षि दयानन्द के उर्दू जीवन-चरित में इस सामग्री को स्थान दिया था।[४] थियोसोफिस्ट

१. पंडित महेशप्रसाद मौलवी आलिम फाजिल ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है। द्रष्टव्य-महर्षि जीवन दर्शक पृष्ठ ३।

२. थियोसोफिस्ट के ये अंक काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में हैं।

३. श्री मथुराप्रसाद भहड़ (माहेश्वरी) अजमेर की धर्मशीला आर्य महिला श्रीमती गुलाबदेवी (चाचीजी) के पति थे।

४. यह उर्दू जीवन-चरित १८९७ ई० में मुन्शी गुलाबसिंह के प्रेस में लाहौर से छपा।

के इन लेखों को विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं ने उद्धृत किया।[५] फर्रुखाबाद से प्रकाशित होने वाले भारत-सुदशाप्रवर्तक (अंक संख्या ६, ७, ८) आर्यसमाचार मेरठ, आर्य अखबार बम्बई, रीजेनेरेटर, दि आर्यावर्त लाहौर, पताका अखबार कलकत्ता आदि ने इस सामग्री को प्रकाशित किया। भारतसुदशाप्रवर्तक में प्रकाशित यह आत्म-वृत्तान्त 'श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज की कुछ दिन-चर्या' के शीर्षक से पुस्तकाकार भी छपा। इसका सम्पादन पं० गणेशप्रसाद शर्मा ने किया था।

थियोसोफिस्ट की सामग्री को मास्टर दुर्गाप्रसाद ने अपने सत्यार्थप्रकाश के अंग्रेजी अनुवाद के प्रारम्भ में भी प्रकाशित किया। सत्यार्थ-प्रकाश का यह आंग्लभाषानुवाद १९०८ ई० में प्रकाशित हुआ था तथा इस आत्मवृत्तान्त को मास्टर जी ने The Autobiography and Travels of Swami Dayanand Saraswati शीर्षक से उद्धृत किया। थियोसोफिकल प्रकाशन गृह अड्यार मद्रास ने Autobiography of Pandit Dayanad Saraswati शीर्षक से इस आत्मकथा को १९५२ ई० में प्रकाशित किया। इसके प्रकाशकीय वक्तव्य में लिखा गया है कि पण्डित दयानन्द सरस्वती की यह आत्मकथा एक मात्र थियोसोफिस्ट पत्र के लिये ही उनके द्वारा लिखी गई थी जिसका सम्पादन उस समय एच० पी० ब्लैवैट्स्की करती थीं तथा यह आत्मवृत्तान्त हिन्दी से अनूदित किया गया है।[६] इस पुस्तक में श्री महाराज का जो इतिवृत्त दिया गया है वह जोशी मठ भ्रमण पर्यन्त ही है, इससे यह विदित होता है कि मद्रास संस्करण में मूल थियोसोफिस्ट में प्रकाशित इतिवृत्त की दो किस्तें ही समाविष्ट हो सकीं और नर्मदा तटवर्ती प्रांत भ्रमण तक का वृत्तान्त जो नवम्बर १८८० के अंक में छपा था इसमें समाविष्ट नहीं हो सका। परन्तु इस ग्रन्थ में स्वामी जी से सम्बन्धित कुछ अन्य सामग्री

५. श्री रतनचन्द बेरी द्वारा सम्पादित तथा लाहौर से प्रकाशित 'दि आर्य' नामक मासिक पत्र के जुलाई १८८२ के अंक में The Autobiography of Swami Dayanand शीर्षक से थियोसोफिस्ट में प्रकाशित इतिवृत्त का प्रारम्भिक भाग (विवाह की तैयारियाँ तक) उद्धृत किया गया है।

६. "This autobiography of Pandit Dayanand Saraswati was written by him expressly for the Theosophist, then by H.P. Blavatsky; translated from Hindi."

प्रकाशित हुई जिसका जीवनीकारों के लिये विशिष्ट उपयोग है।[१]

पंडित भगवद्दत्त जी ने स्वामी जी के स्वकथित (पूना प्रवचन में) तथा स्वलिखित (थियोसोफिस्ट में) आत्म-वृत्तान्त का एक स्वसम्पादित सुन्दर संशोधित संस्करण श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट से प्रकाशित किया। अब तक इसके सात संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम संस्करण कब छपा यह ज्ञात नहीं होता क्योंकि इस संस्करण की भूमिका के अन्त में सम्पादक ने तिथि का उल्लेख तो १५ चैत्र दयानन्दाब्द लिख कर किया परन्तु वर्ष का उल्लेख नहीं है द्वितीय संस्करण २० आषाढ़ दयानन्दाब्द ३४ (१९१७ ई०) को प्रकाशित हुआ। तृतीय संस्करण की भूमिका में पण्डित भगवद्दत्तजी ने आत्मकथन के एक अन्य हस्तलेख का उल्लेख किया है। पण्डितजी के अनुसार स्वामी श्रद्धानन्द जी के पास आत्मकथन की मूल प्रतिलिपि थी। संन्यास-ग्रहण के समय स्वामी जी ने इसे प्रो० रामदेव जी को सौंप दिया। १९७४ विक्रमी के गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर प्रो० रामदेव के सौजन्य से यह हस्तलेख पण्डित भगवद्दत्तजी को प्राप्त हुआ। इसमें हाथी छाप के ६ पृष्ठ थे। प्रथम पाँच पृष्ठों में प्रत्येक पर सत्ताइस पंक्तियाँ थीं। अन्तिम पृष्ठ पर चौदह पंक्तियाँ थीं। पण्डित भगवद्दत्त जी इस बात का निर्धारण नहीं कर सके कि हस्तलेख का लेखक कौन है? उनके अनुसार—

"लेख बड़ा स्पष्ट है और प्रायः अक्षर श्री स्वामी जी के अक्षरों से मिलते हैं। यद्यपि लेख उनका नहीं है, पर पूर्ण निश्चय नहीं हो सका कि लेखक कौन है? कारण कि ऋषि के दो लेखकों के अक्षर प्रायः उनके अक्षरों में मिलते हैं।"

प्रस्तुत संस्करण—परोपकारिणी सभा के पुराने कागजों में वैदिकयन्त्रालय के (स्वामी जी के समकालीन) प्रबन्धकर्त्ता मुन्शी समर्थदान के बस्तों में स्वामीजी के आत्मवृत्तान्त की मूल पाण्डुलिपि दो किस्तों में

१. आत्म-कथन के अतिरिक्त इस पुस्तक में (1) The Pupil of Swami Dayanand at the Congress of Orientalists (2) An "Honest" Enquiry into the aim of our Society. (3) Gleanings from the works of Svami Dayanand Saraswati. By IL PENSEROSO. (4) Swami Dayanand Saraswati and the Pandit of Lahore. (5) Is idolatory taught in the Yajurveda? शीर्षक ५ अन्य परिशिष्ट सामग्री छपी है। विशेष जानकारी के लिये द्रष्टव्य—वेदवाणी में प्रकाशित मेरा लेख 'ऋषि दयानन्द की आत्मकथा—एक ऐतिहासिक विश्लेषण' मई १९६९ ई०।

प्राप्त हुई। यह वही पाण्डुलिपि है जो श्री महाराज ने थियोसोफिस्ट में प्रकाशनार्थ भेजी थी। तीसरी किस्त अनुपलब्ध है, परन्तु प्रस्तुत संस्करण में उसे पण्डित भगवद्दत्त जी के संस्करण के आधार पर उद्धृत किया जा रहा है। इसी पाण्डुलिपि के ६ पृष्ठ पण्डित भगवद्दत्त जी ने देखे होंगे क्योंकि यह हाथी छाप कागज पर लिखी गई है तथा प्रथम पाँच पृष्ठों में प्रत्येक पर २७ पंक्तियाँ हैं। हमें प्राप्त पाण्डुलिपि के अन्तिम पृष्ठ पर १७ पंक्तियाँ थीं। जब कि पंडित भगवद्दत्त जी द्वारा दृष्ट पाण्डुलिपि के अन्तिम पृष्ठ पर १४ पंक्तियाँ थीं। दोनों किस्तों पर श्री महाराज के हस्ताक्षर हैं तथा प्रथम पर यत्र तत्र उनके द्वारा किया हुआ संशोधन भी है। पाण्डुलिपि की दूसरी किस्त सम्पूर्णतया श्री महाराज की ही लिखी हुई है।[१]

प्रस्तुत संस्करण का महत्त्व इस दृष्टि से और भी बढ़ जाता है जब हम देखते हैं कि अब तक स्वामी जी की आत्मकथा के जो संस्करण प्रकाशित हुये हैं वे या तो पंडित लेखराम द्वारा लिखित उर्दू जीवन-चरित से अनूदित होकर प्रकाशित हुये अथवा थियोसोफिस्ट के अंग्रेजी में अनूदित आत्म-वृत्तान्त का पुनः अनुवाद होकर हिन्दी में आये। हमारे इस संस्करण में जोशी मठ तक का वृत्तान्त उस मौलिक सामग्री का अंश है जो स्वयं श्री महाराज के हस्ताक्षरों से प्रमाणित होकर थियोसोफिस्ट में प्रकाशनार्थ भेजी गई थी। अंग्रेजी अनुवाद मद्रास संस्करण (जोशी मठ तक का वृत्त) तथा पण्डित दुर्गाप्रसाद द्वारा उद्धृत सत्यार्थप्रकाश के अनुवाद की भूमिका में प्रकाशित (नर्मदा तट भ्रमण का वृत्त) सामग्री से लिया गया है।

अब हम पाठकों के ज्ञान के लिये स्वामीजी की आत्मकथा के विभिन्न संस्करणों का विवरण प्रस्तुत करते हैं—

हस्तलेखों का विवरण—

(१) मुन्शी समर्थदान के बस्ते में प्राप्त जीवनवृत्त की दो किस्तें। इन्हीं के आधार पर यह संस्करण तैयार किया गया है।

(२) श्री मथुराप्रसाद, मंत्री आर्यसमाज अजमेर की प्रति। इस संस्करण के सम्पादक को श्री मथुराप्रसाद की प्रतिलिपि भी प्राप्त हो गई है। यह

१. यह दूसरी किश्त मुंशीसमर्थदान जी के हाथ से लिखी हुई है, न कि महर्षि दयानन्द जी द्वारा। —विरजानन्द दैवकरणि

प्रति श्री मथुराप्रसाद जी की पत्नी एवं गुलाबदेवी के भतीजे स्वर्गीय केशवदेश कपूरिया के कागजों में उपलब्ध हुई।

(३) पण्डित छगनलाल श्रीमाली की प्रति।

(४) प्रो० रामदेवजी की प्रति (इसकी वर्तमान स्थिति अज्ञात है)

प्रकाशित हिन्दी संस्करण—

(१) श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज की कुछ दिनचर्या—जिसको पण्डित गणेशप्रसाद लेखाध्यक्ष आर्यसमाज फर्रुखाबाद ने प्रेमी जनों के आनन्द विनोदार्थ भारतसुदशाप्रवर्त्तक से उद्धृत की। कम्प फतेगढ़ मुन्शीचुन्नीलाल यन्त्रालय में पंडित जगन्नाथप्रसाद के प्रबन्ध से छापी गई। (इसका द्वितीय संस्करण १८८७ ई० में प्रकाशित हुआ।) एक दुर्लभ प्रति सम्पादक के पुस्तकालय में है।

(२) मुन्शी दयाराम तहसीलदार ने पंडित लेखराम रचित स्वामी जी के उर्दू जीवन-चरित्र में उद्धृत आत्म वृत्तान्त का हिन्दी में अनुवाद कर सर्वप्रथम १९०४ ई० में वजीरचन्द्र शर्मा के आर्य पुस्तकालय लाहौर से प्रकाशित कराया। इसका तृतीय संस्करण १९७९ वि० (जनवरी १९२३ ई० ४० दयानन्दाब्द) में प्रकाशित हुआ।

(३) श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा रचित 'दयानन्दचरित' की अवतरणिका में थियोसोफिस्ट से अनूदित आत्मवृत्त का हिन्दी अनुवाद पंडित घासीरामजी ने किया। भास्कर प्रेस मेरठ से १९१२ ई० में प्रकाशित दयानन्दचरित।

(४) ऋषि दयानन्द सरस्वती स्वरचित (लिखित वा कथित) जन्म चरित्र—पंडित भगवद्दत्त द्वारा सम्पादित। (श्रीरामलाल कपूर ट्रस्ट से प्रकाशित)

(५) ऋषि दयानन्द सरस्वती की आत्मकथा—पंडित जगत्कुमार शास्त्री द्वारा सम्पादित। गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली द्वारा प्रकाशित, दयानन्द ग्रन्थ संग्रह के अन्तर्गत तथा पृथक् रूप से प्रकाशित। (सं० २०१० वि०) इसमें भी पूना के व्याख्यान तथा थियोसोफिस्ट में प्रकाशित लेखों का अनुवाद (पंडित देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय लिखित दयानन्द चरित की अवतरणिका का अनुवाद जो पंडित घासीराम द्वारा किया गया) संकलित है। दयानन्द चरित का प्रकाशन गोविन्दराम हासानन्द कलकत्ता ने भी किया था। (तृतीय संस्करण १९४६ ई०)।

(६) महर्षि दयानन्द लिखित आत्मकथा (थियोसोफिस्ट से अनूदित) आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश द्वारा २०१० वि० में प्रकाशित।

प्रकाशित अंग्रेजी संस्करण—

(१) मास्टर दुर्गाप्रसाद ने थियोसोफिस्ट में प्रकाशित सामग्री को A Triumph of Truth of a Short autobiography of the great Rishee Swami Dayanand Saraswati शीर्षक से पृथक् पुस्तक रूप में प्रकाशित किया तथा अपने सत्यार्थप्रकाश के अंग्रेजी में अनुवाद की भूमिका में भी उद्धृत किया।

(२) Autobiography of Pandit Dayanand Saraswati थियोसोफिस्ट पब्लिशिंग हाउस अड्यार मद्रास से १९५२ ई० में प्रकाशित।

प्रकाशित उर्दू अनुवाद—

(१) पंडित लेखराम रचित (संकलित) 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित' में संगृहीत प्रथम संस्करण १८९७ ई० (हिन्दी अनुवाद पंडित रघुनन्दनसिंह निर्मल कृत तथा आर्यसमाज नयाबांस दिल्ली से २०२८ वि० में प्रकाशित)।

(२) उर्दू अनुवाद श्री दलपतराय विद्यार्थी एम-ए० कृत 'खुद नविश्त स्वानेह उमरी' १९४५ वि० में लाहौर से प्रकाशित।

अन्य भाषाओं में अनुवाद—

(१) पंडित देवन्द्रनाथ कृत बंगानुवाद—यह १८९४ ई० में प्रकाशित दयानन्द चरित की अवतरणिका में छपा। इसमें पूना प्रवचन तथा थियोसोफिस्ट की पूर्ण सामग्री बंगला में अनूदित की गई।

(२) पंडित देवेन्द्रनाथ लिखित तथा वैदिक मैगजीन के फरवरी १९१६ के अंक में प्रकाशित The birthplace and parentage of Swami Dayanand शीर्षक लेख से विदित होता है कि आत्मवृत्तान्त के बंगानुवाद के आधार पर उसका गुजराती भाषा में भी अनुवाद हुआ था।

(३) स्वर्गीय पंडित कालीचरण शर्मा मौलवी आलिम फाजिल ने 'स्वानेह उमरी आरिफ दयानन्द' शीर्षक से इसका फारसी भाषा में अनुवाद किया।

पुनश्च-मुन्शी इन्द्रमणि के शिष्य जगन्नाथदास ने 'दयानन्द जीवन चरित और समालोचना', शीर्षक पुस्तक में इस सामग्री को समग्रत: उद्धृत कर उस पर अपनी आलोचना लिखी है। प्रकाशन १९७२ वि०।

मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती संक्षेप से अपना जन्मचरित्र लिखता हूं।

संवत् १८८१ के वर्ष में मेरा जन्म दक्षिण गुजरात प्रान्त देश काठियावाड़ का मजोकठा देश मोर्वी का राज्य औदीच्य ब्राह्मण के घर में हुआ था, यहां **अपना पिता का निज निवास स्थान के प्रसिद्ध नाम इसलिये मैं नहीं लिखता कि जो माता-पिता आदि जीते हों मेरे पास आवें तो इस सुधार के काम में विघ्न हो क्योंकि मुझको उनकी सेवा करना उनके साथ घूमने में श्रम और धन आदि का व्यय कराना नहीं चाहता।**[१] मैंने पांचवें वर्ष में देवनागरी अक्षर पढ़ने को आरम्भ किया था। और मुझको कुल की रीति की शिक्षा भी माता पिता आदि किया करते थे, बहुत से धर्मशास्त्रादि के श्लोक और सूत्रादि भी कण्ठस्थ कराया करते थे। फिर आठवें वर्ष में मेरा यज्ञोपवीत कराके गायत्री संध्या और उसकी क्रिया सिखा दी गई थी। और मुझको यजुर्वेद की संहिता का आरम्भ कराके उसमें प्रथम रुद्राध्याय पढ़ाया गया था, और मेरे कुल में शैव मत था, उसी की शिक्षा भी किया करते थे। और पिता आदि लोग यह भी कहा करते थे कि पार्थिव पूजन अर्थात् मट्टी का लिङ्ग बनाके तूँ पूजा कर। और माता मने किया करती थी कि यह प्रात:काल भोजन कर लेता है, इससे पूजा नहीं हो सकेगी। पिताजी हठ किया करते थे कि पूजा अवश्य करनी चाहिये क्योंकि कुल की रीति है। तथा कुछ-कुछ व्याकरण का विषय और वेदों का पाठ मात्र भी मुझको पढ़ाया करते थे। पिताजी अपने साथ मुझको जहां तहां मन्दिर और मेल मिलापों में ले जाया करते और यह भी कहा करते थे कि शिव की उपासना सबसे श्रेष्ठ है। इस प्रकार १४ चौदहवें वर्ष की अवस्था के आरम्भ तक यजुर्वेद की संहिता सम्पूर्ण और कुछ अन्य वेदों का भी पाठ पूरा हो गया था। और शब्द रूपावली आदि छोटे-छोटे व्याकरण के ग्रन्थ भी पूरे हो गये थे। पिताजी जहां जहां शिवपुराण आदि की कथा होती थी, वहां, मुझ को पास बैठा कर सुनाया करते थे।

१. यह संशोधन श्री महाराज ने स्वहस्त से हाशिये पर किया है।

और घर में भिक्षा की जीविका नहीं थी किन्तु जिमीदारी और लेन-देन से जीविका के प्रबन्ध करके सब काम चलाते थे। और मेरे पिता ने माता के मने करने पर भी पार्थिव पूजन का आरम्भ करा दिया था। जब शिवरात्रि आई तब १३ त्रयोदशी के दिन कथा का माहात्म्य सुना के शिवरात्रि के व्रत करने का निश्चय करा दिया। परन्तु माता ने मने भी किया कि इससे व्रत नहीं रहा जायगा, तथापि पिताजी ने व्रत का आरम्भ करा दिया। और जब १४ चतुर्दशी की शाम हुई, तब बड़े-बड़े वस्ती के रईस अपने पुत्रों के सहित मंदिरों में जागरण करने को गये। वहां मैं भी अपने पिता के साथ गया और प्रथम प्रहर की पूजा भी करी। दूसरे प्रहर की पूजा करके पूजारि[२] लोग बाहर निकलके सो गये। मैंने प्रथम से सुन रक्खा था कि सोने से शिवरात्रि का फल नहीं होता है। इसलिये अपनी आंखों में जल के छींटे मार के जागता रहा और पिता भी सो गये तब मुझ को शंका हुई कि जिसकी मैंने कथा सुनी थी, वही यह महादेव है वा अन्य कोई, क्योंकि वह तो मनुष्य के माफक एक देवता है, वह बैल पर चढ़ता, चलता फिरता, खाता पीता, त्रिशूल हाथ में रखता, डमरू बजाता, वर और शाप देता और कैलाश का मालिक है इत्यादि प्रकार का महादेव कथा में सुना था। तब पिताजी को जगा के मैंने पूछा कि यह कथा का महादेव है वा कोई दूसरा? तब पिता ने कहा कि क्यों पूछता है? तब मैंने कहा कि कथा का महादेव तो चेतन है वह अपने ऊपर चूहों को क्यों चढ़ने देगा और इसके ऊपर तो चूहे फिरते हैं। तब पिताजी ने कहा कि कैलाश पर जो महादेव रहते हैं उनकी मूर्ति बना और आवाहन करके पूजा किया करते हैं। अब कलियुग में उस शिव का साक्षात् दर्शन नहीं होता। इसलिए पाषाणादि की मूर्ति बना के उन महादेव की भावना रख कर पूजन करने से कैलाश का महादेव प्रसन्न हो जाता है। ऐसा सुन के मेरे मन में भ्रम हो गया कि इसमें कुछ गड़बड़ अवश्य है। और भूख भी बहुत लग रही थी, पिता से पूछा कि मैं घर को जाता हूँ। तब उन्होंने कहा कि सिपाही को साथ लेके चला जा, परन्तु भोजन कदाचित् मत करना। मैंने घर में जाकर माता से कहा कि मुझ को भूख लगी है। माता ने कुछ मिठाई आदि दिया, उसको खाकर १ एक बजे पर सो गया।

२. स्वामी जी मंन्दिर के पुजरियों को विनोद में पूजारि—पूजा+अरि पूजा का शत्रु कहा करते थे।

पिताजी प्रात:काल रात्रि के भोजन को सुनके बहुत गुस्से हुये कि तैने बहुत बुरा काम किया। तब मैंने पिता से कहा कि यह कथा का महादेव नहीं है इसकी पूजा मैं क्यों करूं। मन में तो श्रद्धा नहीं रही, परन्तु ऊपर के मन पिताजी से कहा कि मुझको पढ़ने से अवकाश नहीं मिलता कि मैं पूजा कर सकूं, तथा माता और चाचा आदि ने भी पिता को समझाया, इस कारण पिता भी शान्त हो गये कि अच्छी बात है, पढ़ने दो। फिर निघण्टु निरुक्त और पूर्व मीमांसा आदि शास्त्रों के पढ़ने की इच्छा करके आरम्भ करके पढ़ता रहा और कर्मकाण्ड विषय भी पढ़ता रहा।

मुझसे छोटी १ बहन फिर उससे छोटा एक भाई फिर भी एक बहन और एक भाई अर्थात् दो बहन और दो भाई और हुए थे। तब तक मेरी १६ वर्ष की अवस्था हुई थी। पीछे मुझसे छोटी १४ वर्ष की जो बहन थी, उसको हैजा हुआ। एक रात्रि में कि जिस समय नाच हो रहा था, नौकर ने खबर दी कि उसको हैजा हुआ है। तब सब जने वहां से तत्काल आए और वैद्य आदि बुलाये, औषधि भी की तथापि चार घण्टे में उस बहन का शरीर छूट गया। सब लोग रोने लगे, परन्तु मेरे हृदय में ऐसा धक्का लगा और भय हुआ कि ऐसे ही मैं भी मर जाऊंगा, शोच विचार में पड़ गया। जितने जीव संसार में हैं उनमें से एक भी न बचेगा। इससे कुछ ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे यह दु:ख छूटे और मुक्ति हो अर्थात् इसी समय से मेरे चित्त में वैराग्य की जड़ पड़ गई। परन्तु यह विचार अपने मन में ही रक्खा, किसी से कुछ भी न कहा।

इतने में १९ वर्ष की जब अवस्था हुई, तब जो मुझ से अति प्रेम करने वाले बड़े धर्मात्मा विद्वान् मेरे चाचा थे, उनकी मृत्यु होने से अत्यन्त वैराग्य हुआ कि संसार में कुछ भी नहीं, परन्तु यह बात माता-पिता से तो नहीं कही किन्तु अपने मित्रों से कहा कि मेरा मन गृहाश्रम करना नहीं चाहता। उन्होंने माता-पिता से कहा। माता-पिता ने विचारा कि इसका विवाह शीघ्र कर देना चाहिये। जब मुझको मालूम पड़ा कि ये २० बीसवें वर्ष में ही विवाह कर देंगे, तब मित्रों से कहा कि मेरे माता-पिता को समझा दो, अभी विवाह न करें। तब उन्होंने एक वर्ष जैसे-तैसे विवाह रोका, तब तक २० बीसवां वर्ष पूरा हो गया। तब मैंने पिताजी से कहा कि मुझे काशी में भेज दीजिये कि मैं व्याकरण, ज्योतिष और वैद्यक आदि ग्रन्थ पढ़ आऊँ। तब माता-पिता और कुटुम्ब के लोगों ने कहा कि हम

काशी को कभी न भेजेंगे जो कुछ पढ़ना हो सो यहीं पढ़ो। और अगली साल में तेरा विवाह भी होगा क्योंकि लड़की वाला नहीं मानता। और हमको अधिक पढ़ा के क्या करना है जितना पढ़ा है वही बहुत है। फिर मैंने पिता आदि से कहा कि मैं पढ़ कर आऊँ तब विवाह होना ठीक है, तब माता भी विपरीत हो गई कि हम कहीं नहीं भेजते और अभी विवाह करेंगे। तब मैंने चाहा कि अब सामने रहना अच्छा नहीं। फिर ३ कोश ग्राम में अपनी जिमीदारी थी, वहां एक अच्छा पण्डित था। माता-पिता की आज्ञा लेके वहां जाकर उस पण्डित के पास मैं पढ़ने लगा। और वहां के लोगों से भी कहा कि मैं गृहाश्रम करना नहीं चाहता। फिर माता-पिता ने मुझे बुला के विवाह की तैय्यारी कर दी। तब तक २१ इक्कीसवां वर्ष भी पूरा हो गया। जब मैंने निश्चित जाना कि अब विवाह किये विना कदाचित् न छोड़ेंगे। फिर गुपचुप संवत् १९०३ के वर्ष घर छोड़ के संध्या के समय भाग उठा। चार कोश पर एक ग्राम था, वहां जाकर रात्रि को ठहर कर दूसरे दिन प्रहर रात्रि से उठ के १५ कोश चला, परन्तु प्रसिद्ध ग्राम, सड़क और जानकारों के ग्रामों को छोड़ के बीच-बीच में नित्य चलने का प्रारम्भ किया। तीसरे दिन मैंने किसी राज पुरुष से सुना कि फलाने का लड़का घर छोड़ कर चला गया उसको खोजने के लिये सवार और पैदल आदमी यहां तक आये थे। जो मेरे पास थोड़े से रुपैये और अंगूठी आदि भूषण था, वह सब पोपों ने ठग लिया। मुझसे कहा कि तुम पक्के वैराग्यवान् तब होगे कि जब अपने पास की चीज सब पुण्य कर दो। फिर उन लोगों के कहने से मैंने जो कुछ था सब दे दिया।

फिर लाला भगत की जगह जो कि सायले शहर में है वहाँ बहुत साधुओं को सुन कर चला गया। वहाँ एक ब्रह्मचारी मिला, उसने मुझसे कहा कि तुम नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो जाओ। उसने मुझको ब्रह्मचारी की दीक्षा दी और शुद्ध चैतन्य मेरा नाम रक्खा तथा काषाय वस्त्र भी करा दिये। जब मैं वहां से अहमदाबाद के पास कौठ गांगड़ जोकि छोटा सा राज्य है वहां आया, तब मेरे गाम के पास का जान पहचान वाला एक वैरागी मिला। उसने पूछा कि तुम कहां से आये और कहां जाया चाहते हो। तब मैंने उससे कहा कि घर से आया और कुछ देश भ्रमण किया चाहता हूं। उसने कहा कि तुमने काषाय वस्त्र धारण करके क्या घर छोड़ दिया। मैंने कहा कि हां मैंने घर छोड़ दिया और कार्त्तिकी के मेले पर सिद्धपुर को

जाऊंगा। फिर मैं वहां से चल कर सिद्धपुर में आके नीलकण्ठ महादेव की जगह में ठहरा कि जहां दण्डी स्वामी और ब्रह्मचारी ठहर रहे थे। उनका सत्संग और जो-जो कोई महात्मा वा पण्डित मेले में सुन पड़ा, उन सबके पास गया और उनसे सत्संग किया।

जो मुझको कौठ गांगड़ में वैरागी मिला था, उसने फिर मेरे पिता के पास पत्र भेजा कि तुम्हारा पुत्र ब्रह्मचारी हुआ काषाय वस्त्र धारण किये मुझ को मिला और कार्त्तिकी के मेले में सिद्धपुर को गया। ऐसा सुन के सिपाहियों के सहित पिताजी सिद्धपुर में आकर मेले में खोज कर पता लगाके जहां पंडितों के बीच में मैं बैठा था वहां पहुंच कर मुझ से बोले कि तूँ हमारे कुल में कलंक लगाने वाला पैदा हुआ। जब मैंने पिताजी की ओर देख के उठके चरण स्पर्श किया, नमस्कार करके बोला कि आप क्रोधित मत हूजिये मैं किसी आदमी के बहकाने से चला आया और मैंने बहुत सा दु:ख पाया। अब मैं घर को आने वाला था। परन्तु अब आप आये, यह बहुत अच्छा हुआ कि अब मैं साथ-साथ घर को चलूंगा। तो भी क्रोध के मारे मेरे गेरु के रंगे वस्त्र और एक तूंबे को तोड़ फार के फेंक दिये और वहां भी बहुत कठिन-कठिन बातें कह कर बोले कि तूँ अपनी माता की हत्या लिया चाहता है। मैंने कहा कि मैं अब घर को चलूंगा तो भी मेरे साथ साथ सिपाही कर दिये कि क्षण भर भी इसको अकेला मत छोड़ो और इस पर रात्रि को भी पहरा रक्खो। परन्तु मैं भागने का उपाय देख रहा था।

सो जब तीसरी रात के तीन बजे के पीछे पहरे वाला बैठा-बैठा सो गया, उसी समय मैं लघुशंका का बहाना करके भागा। आध कोश पर एक मंदिर के शिखर की गुफा में एक वृक्ष के सहारे से चढ़ और जल का लोटा भर के छिप कर बैठ रहा, जब चार बजे का अमल हुआ तब मैंने उन्हीं सिपाहियों में से एक सिपाही मालियों से मुझ को पूछता सुना तब मैं और भी छिप गया। ऊपर बैठा सुनता रहा वे लोग ढूंड कर चले गये। मैं उसी मंदिर की शिखर में दिन भर रहा। जब अन्धेरा हुआ तब उस पर से उतर, सड़क को छोड़ के किसी से पूछ के दो कोश पर एक ग्राम था, उसमें ठहर के अहमदाबाद होता हुआ बड़ोदरे शहर में आकर ठहरा।

वहां चेतन मठ में ब्रह्मानन्द आदि ब्रह्मचारी और संन्यासियों से

वेदान्त विषय की बहुत बातें की। और मैं ब्रह्म हूं अर्थात् जीव ब्रह्म एक है ऐसा निश्चय उन ब्रह्मानन्दादि ने मुझको करा दिया। प्रथम वेदान्त पढ़ते समय भी कुछ-कुछ निश्चय हो गया था, परन्तु वहां ठीक दृढ़ हो गया कि मैं ब्रह्म हूँ। फिर वहीं बड़ोदे में एक बनारसी बाई वैरागी का स्थान सुनकर उसमें जाके एक सच्चिदानन्द परमहंस से भेंट करके अनेक प्रकार की शास्त्र विषयक बातें हुई। फिर वहां सुना कि आजकल चाणोद कन्याली में बड़े-बड़े संन्यासी ब्रह्मचारी और विद्वान् ब्राह्मण रहते हैं। वहां जाके दीक्षित और चिदाश्रमादि स्वामी ब्रह्मचारी और पण्डितों से अनेक विषयों का परस्पर सम्भाषण हुआ। फिर एक परमानन्द परमहंस से वेदान्तसार आर्य्या, हरिमीड़े, तोटक, वेदान्त परिभाषा आदि प्रकरणों का थोड़े महीनों में विचार कर लिया। उस समय ब्रह्मचर्य्यावस्था में कभी-कभी अपने हाथ से रसोई बनाने पड़ती थी, इस कारण पढ़ने में विघ्न विचार के चाहा कि अब संन्यास ले लेना अच्छा है। फिर एक दक्षिणी पण्डित के द्वारा वहां जो दीक्षित स्वामी विद्वान् थे, उनको कहलाया कि आप उस ब्रह्मचारी को संन्यास की दीक्षा दे दीजिये। क्योंकि मैं अपना ब्रह्मचारी का नाम भी बहुत प्रसिद्ध करना नहीं चाहता था क्योंकि घर का भय बड़ा था जोकि अब तक बना है। तब उन्होंने कहा कि उस की अवस्था कम है, इसलिए हम नहीं देते। इसके अनन्तर दो महीने के पीछे दक्षिण से एक दण्डी स्वामी और एक ब्रह्मचारी आके चाणोद से कुछ कम कोश भर मकान जो कि जंगल में था उसमें ठहरे। उनको सुनकर एक दक्षिणी वेदान्तिपण्डित और मैं दोनों उनके पास जाके शास्त्र विषयक सम्भाषण करने से मालूम हुआ कि अच्छे विद्वान् हैं। और श्रृंगीरी मठ की ओर से आके द्वारिका की ओर को जाते थे। उनका नाम पूर्णानन्द सरस्वती था। उनसे उस वेदान्ति के द्वारा कहलाया कि ये ब्रह्मचारी विद्या पढ़ना चाहते हैं। यह मैं ठीक जानता हूँ कि किसी प्रकार का अपगुण इनमें नहीं है, इनको आप संन्यास दे दीजिये संन्यास लेने का इनका प्रयोजन यही है कि निर्विघ्न विद्या का अभ्यास कर सकें। तब उन्होंने कहा कि किसी गुजराती स्वामी से कहो क्योंकि हम तो महाराष्ट्र हैं। तब उनसे कहा कि दक्षिणी स्वामी गौड़ों को भी संन्यास देते हैं तो यह ब्रह्मचारी तो पंच द्राविड़ है इसमें क्या चिन्ता है। तब उन्होंने मान लिया और उसी ठिकाने तीसरे दिन संन्यास की दीक्षा दण्ड ग्रहण कराया और दयानन्द सरस्वती नाम

रक्खा। परन्तु मैंने दण्ड का विसर्जन भी उन्हीं स्वामी जी के साम्हने कर दिया क्योंकि दण्ड की भी बहुत क्रिया है कि जिससे पढ़ने में विघ्न हो सकता था। फिर वे स्वामीजी द्वारिका की ओर चले गये। मैं कुछ दिन चाणोद कन्याली में रहके व्यासाश्रम में एक योगानन्द स्वामी को सुना कि वे योगाभ्यास में अच्छे हैं, उनके पास जाके योगाभ्यास की क्रिया सीख के एक कृष्ण शास्त्री छिनौर शहर के बाहर रहते थे, उनको सुनके व्याकरण पढ़ने के लिये उनके पास गया और कुछ व्याकरण का अभ्यास करके फिर चाणोद में आकर ठहरा वहाँ दो योगी मिले कि जिनका नाम ज्वालानन्दपुरी और शिवानन्द गिरि था। उनसे भी योगाभ्यास की बातें हुई और उन्होंने कहा कि तुम अहमदाबाद में आओ वहां हम नदी के ऊपर दूधेश्वर महादेव में ठहरेंगे। वहां आवोगे तो योगाभ्यास की रीति सिखलावेंगे। वहाँ से वे अहमदाबाद को चले गये। फिर एक महीने के पीछे मैं भी अहमदाबाद में जाके उनसे मिला और योगाभ्यास की रीति सीखी। फिर आबूराज पर्वत में योगियों को सुनके वहां जाके अर्वदा भवानी आदि स्थानों में भवानीगिरि आदि योगियों से मिल के कुछ और योगाभ्यास की रीति सीख के संवत् १९११ के वर्ष के अन्त में हरद्वार के कुम्भ के मेले में आके बहुत साधु संन्यासियों से मिला और जब तक मेला रहा, तब तक चण्डी के पहाड़ के जंगल में योगाभ्यास करता रहा। जब मेला हो चुका, तब हृषीकेश में जाके संन्यासियों और योगियों से योग की रीति सीखता और सत्संग करता रहा।

इसके आगे फिर लिखेंगे

दयानन्दसरस्वती

फिर वहां से एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधु मेरे साथ आये। हम सब जने टिहरी में आए, वहाँ बहुत साधु और राजपण्डितों से समागम हुआ। वहां एक पण्डित ने एक दिन मुझे और ब्रह्मचारी को अपने घर में भोजन करने के लिए निमन्त्रण दिया। समय पर उसका एक मनुष्य बुलाने को आया। तब मैं और ब्रह्मचारी उसके घर भोजन करने को गये। जब उसके घर के द्वार में घुस करके देखा तो एक ब्राह्मण मांस को काटता था। उसको देखकर जब भीतर गये, तब बहुत से पण्डितों को एक सिमियाने के भीतर बैठे देखे और वहाँ बकरे का मांस, चमड़ा और शिर

देख के पीछे लौटे। पण्डित देख के बोला कि आइये। तब मैंने उतर दिया कि आप अपना काम कीजिये। हम बाहर जाते हैं। ऐसा कह कर अपने स्थान पर चले आये। तब पण्डित भी हमको बुलाने आया। उनसे मैंने कहा कि तुम सूखा अन्न भेज दो। हमारा ब्रह्मचारी बना लेगा। पण्डित बोले कि आपके लिए तो सब पदार्थ बनाये हैं। मैंने उनसे कहा कि आपके घर में मुझ से भोजन कदापि न किया जावेगा, क्योंकि आप लोग मांसाहारी हैं। और मुझको देखने से घृणा आती है। फिर पण्डित ने अन्न भेज दिया। पीछे वहाँ कुच्छ दिन ठहर कर पण्डितों से पूछा कि इस पहाड़ देश में कौन-कौन शास्त्र के ग्रन्थ देखने को मिलते हैं। मैं देखना चाहता हूँ। तब उन्होंने कहा कि व्याकरण, काव्य, कोष, ज्योतिष, और तन्त्र ग्रन्थ बहुत मिलते हैं। तब मैंने कहा कि और ग्रन्थ तो मैंने देखे हैं परन्तु तन्त्र ग्रन्थ देखना चाहता हूँ। तब उन्होंने छोटे बड़े ग्रन्थ मुझको दिये। मैंने देखे तो बहुत भ्रष्टाचार की बातें उनमें देखीं कि माता, कन्या, भगिनी, चमारी, चांडाली आदि से संगम करना, नग्न करके पूजना। मद्य, मांस, मच्छी, मुद्रा अर्थात् ब्राह्मण से लेके चांडाल पर्य्यन्त एकत्र भोजन करना और उक्त स्त्रियों से मैथुन करना इन पांच मकारों से मुक्ति का होना आदि लेख उनमें देख के चित्त को खेद हुआ कि जिनने ये ग्रन्थ बनाये हैं वे कैसे नष्टबुद्धि थे। फिर वहाँ से श्रीनगर को जाके केदार घाट पर मन्दिर में ठहरे और वहाँ भी तन्त्र ग्रन्थों का देखना और पण्डितों से इस विषय में संवाद होता रहा। इतने में एक गंगागिरि साधु जो कि पहाड़ में ही रहता था, उससे भेंट हुई और योग विषय में कुच्छ बातचीत होने से विदित हुआ कि यह साधु अच्छा है। कई वार उससे बातें हुई। मैंने उससे पूछा, उसने उत्तर दिया, उसने मुझसे पूछा, उसका उत्तर मैंने दिया। दोनों प्रसन्न होकर दो महीने तक वहाँ रहे। जब वर्षा ऋतु आई तब आगे रुद्र प्रयागादि देखता हुआ अगस्त मुनि के स्थान पर पहुंच कर उसके उत्तर पहाड़ पर एक शिवपुरी स्थान है वहाँ जाकर चार महीने निवास करके पीछे उन साधु और ब्रह्मचारी को वहाँ छोड़ के अकेला केदार की ओर चलता हुआ गुप्त काशी में पहुंचा। वहाँ कुच्छ दिन रह कर, वहाँ से आगे चल के त्रियुगीनारायण का स्थान और गौरीकुण्ड देखता हुआ भीम गुफा देखकर थोड़े ही दिनों में केदार में पहुंच कर निवास किया। वहाँ कई एक साधु पण्डे और केदार के पूजारी जङ्गम मत के थे उनसे समागम हुआ। तब तक पांच छः दिन

के पीछे वे साधु और ब्रह्मचारी भी वहाँ आ गये। वहाँ का सब चरित्र देखा। फिर इच्छा हुई कि इन बर्फ के पहाड़ों में भी कुच्छ घूम के देखें कि कोई साधु महात्मा रहता है वा नहीं, परन्तु मार्ग कठिन और उन पहाड़ों में अतिशीत भी है। वहाँ के निवासियों से भी पूछा कि इन पहाड़ों में कोई साधु महात्मा रहता है वा नहीं। उन्होंने कहा कि कोई नहीं। वहाँ २० बीस (दिन) रहकर पीछे को अकेला ही लौटा क्योंकि वह ब्रह्मचारी और साधु दो दिन रह कर शीत से घभरा के प्रथम ही चले गये थे। फिर मैं वहाँ से चल के तुङ्गनाथ के पहाड़ पर चढ़ गया। उसका मन्दिर, पूजारी, बहुत सी मूर्त्ति आदि की सब लीला को देख कर तीसरे पहर वहाँ से नीचे को उतरा। बीच में से दो मार्ग थे एक पश्चिम को और एक पश्चिम और दक्षिण के बीच को जाता था, जो जङ्गली मार्ग था मैं उसमें चढ़ गया। आगे दूर जाकर देखा तो जंगल पहाड़ और बहुत गहरा सूखा नाला है उसमें मार्ग बन्द हो रहा है। विचारा कि जो पहाड़ पर चढ़े तो रात हो जावेगी, पहाड़ का मार्ग कठिन है वहाँ पहुंच नहीं सकता। ऐसा विचार, उस नाले में बड़ी कठिनता से घास और वृक्षों को पकड़-पकड़ नीचे उतर कर नाले के किनारे पर चढ़ कर देखा तो पहाड़ और जङ्गल हैं कहीं भी मार्ग नहीं। तब तक सूर्य्य अस्त होने को आया। विचारा कि जो रात हो जावेगी तो यहाँ जल अग्नि कुच्छ भी नहीं है फिर क्या करेंगे। ऐसा विचार कर आगे को बढ़ा जङ्गल में चलते अनेक ठोकर और कांटे लगे, शरीर के वस्त्र भी फट गये, बड़ी कठिनता से पहाड़ के पार उतरा तब सड़क मिला। और अन्धेरा भी हो गया, फिर सड़क-सड़क चल के एक स्थान मिला, वहीं के लोगों से पूछा कि यह कहाँ की सड़क है कहा कि ओखी मठ की। फिर वहां रात्रि को रहकर क्रम से गुप्त काशी आया, वहाँ थोड़ा ठहर कर ओखी मठ में जाकर उसमें ठहर के देखा तो बड़ी भारी पोप लीला, बड़े भारी कारखाने। वहाँ के महान्त ने कहा कि तुम हमारे चेले हो जाओ यहाँ रहो, लाखों के कारखाने तुम्हारे हाथ हो जावेंगे मेरे पीछे तुम्ही महान्त होंगे। मैंने उनको उत्तर दिया कि सुनो ऐसी मेरी इच्छा होती तो अपने माता, पिता, बन्धु, कुटुम्ब, और घर आदि ही क्यों छोड़ता। क्या तुम्हारा स्थान और तुम उनसे भी अधिक हो सकते हो। मैंने जिस लिये सब छोड़े हैं वह तुम्हारे पास किंचिन्मात्र भी नहीं है। उनने पूछा कि कह क्या बात है। मैंने उत्तर दिया कि सत्य विद्या, योग, मुक्ति और अपने

आत्मा की पवित्रता आदि गुणों से धर्म्मात्मता पूर्वक उन्नति करना है। तब महान्त ने कहा कि अच्छा तुम कुच्छ दिन यहाँ रहो। मैंने उनको कुच्छ उत्तर न दिया और प्रात:काल उठके मार्ग में चल के जोशी मठ को पहुंच के वहां के दक्षिणी शास्त्री और संन्यासी थे उनसे मिल कर वहाँ ठहरा॥

दयानन्दसरस्वती

और बहुत से योगियों और विद्वान् महन्तों और साधुओं से भेंट हुई और उनसे वार्तालाप में मुझको योग विद्या सम्बन्धी और बहुत नई बातें ज्ञात हुईं।

उनसे पृथक् होकर पुन: मैं बद्रीनारायण को गया। विद्वान् रावल जी उस समय उस मन्दिर का मुख्य महन्त था। और मैं उसके साथ कई दिन तक रहा। हम दोनों का परस्पर वेदों और दर्शनों पर बहुत वाद विवाद रहा। जब उनसे मैंने पूछा कि इस परिस्थिति में कोई विद्वान् और सच्चा योगी भी है वा नहीं, तो उसने यह जताने में बड़ा शोक प्रकट किया कि इस समय इस परिस्थिति में कोई ऐसा योगी नहीं है। परन्तु उसने बताया कि मैंने सुना है कि प्राय: ऐसे योगी इसी मन्दिर के देखने के लिये आया करते हैं। उस समय मैंने यह दृढ़ संकल्प कर लिया, कि समस्त देशों में और विशेषत: पर्वतीय स्थलों में अवश्य ऐसे पुरुषों का अन्वेषण करूंगा।

एक दिन सूर्योदय के होते ही मैं अपनी यात्रा पर चल पड़ा और पर्वत की उपत्यका में होता हुआ अलखनन्दा नदी के तट पर जा पहुंचा। मेरे मन में उस नदी के पार करने की किंचित् इच्छा न थी। क्योंकि मैंने उस नदी के दूसरी ओर एक बड़ा ग्राम माना नामक देखा, अत: अभी उस पर्वत की उपत्यका में ही अपनी गति रख कर नदी के वेग के साथ साथ मैं जंगल की ओर हो लिया। पर्वत, मार्ग और टीले आदि सब हिम के वस्त्र पहने हुये थे। और बहुत घनी हिम उनके ऊपर थी। अत: अलखनन्दा नदी के स्रोत तक पहुंचने में मुझको अत्यन्त कष्ट उठाने पड़े। परन्तु जब मैं वहाँ गया तो अपने आपको सर्वथा अपरिचित और अजान जाना। और अपने चारों ओर ऊंची ऊंची पहाड़ियाँ देखीं तो मुझे आगे मार्ग बन्द दिखाई दिया। कुछ ही काल पश्चात् पथ सर्वथा लुप्त हो गया और उस मार्ग का मुझ को कोई पता न मिला। उस समय मैं सोच और चिंता में था कि क्या करना चाहिये। अन्तत: अपना मार्ग अन्वेषण करने के अर्थ

मैंने नदी को पार करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। मेरे पहने हुए वस्त्र बहुत हलके और थोड़े थे और शीत अत्यधिक था। कुछ ही काल पश्चात् शीत ऐसा अधिक हुआ कि उसका सहन करना असम्भव था। क्षुधा और पिपासा ने जब मुझे अत्यन्त बाधित किया तो मैंने एक हिम का टुकड़ा खाकर उसको बुझाने का विचार किया, परन्तु उससे किंचित् आराम वा संतुष्टि प्रतीत न हुई। पुनः मैं नदी में उतर उसे पार करने लगा।

कतिपय स्थानों पर नदी बहुत गम्भीर थी और कहीं पानी बहुत कम था। परन्तु एक हाथ या आध गज से कम गहरा कहीं न था। किन्तु विस्तार अर्थात् पार में दस हाथ तक था अर्थात् कहीं से चार गज और कहीं से पांच गज। नदी हिम के छोटे और तिरछे टुकड़ों से भरी हुई थी। उन्होंने मेरे पांव को अति घावयुक्त कर दिया सो मेरे नग्न पांव से रक्त बहने लगा। मेरे पांव शीत के कारण नितान्त सन्न हो गये थे। जिस कारण मैं बड़े-बड़े घावों से भी कुछ काल तक अचेत रहा। इस स्थान पर अतिशीत के कारण मुझ पर अचेतनता सी छाने लगी। यहां तक कि मैं अचेतन अवस्था में होकर हिम पर गिरने को था जब मुझे विदित हुआ कि यदि मैं यहाँ पर इसी प्रकार गिर गया तो पुनः यहां से उठना मेरे लिये अत्यन्त असम्भव और कठिन होगा। एवं दौड़ धूप करके जैसे हुआ मैं प्रबल प्रयत्न करके वहां से कुशल मंगल पूर्वक निकला और नदी के दूसरी ओर जा पहुंचा। वहां जाकर यद्यपि कुछ काल तक मेरी अवस्था ऐसी रही जो जीवित की अपेक्षा मृतवत् थी तथापि मैंने अपने शरीर के उपरिभाग को सर्वथा नंगा कर लिया और अपने समस्त वस्त्रों से जो मैंने पहने हुये थे जानु वा पांव तक जंघा को लपेट लिया। और वहां पर मैं सर्वथा शक्तिहीन और घबराया हुआ आगे को हिल सकने और चल सकने में अशक्त खड़ा हो गया। इस प्रकार प्रतीक्षा में था कि कोई सहायता मिले जिससे मैं आगे को चलूं। परन्तु इस बात की कोई आशा न थी कि वह आवेगी कहाँ से? सहायता की आशा में था, परन्तु सर्वथा विवश था और जानता था कि कोई सहायता का स्थान दिखाई नहीं देता। अन्त को पुनः एक वार मैंने अपने चारों ओर दृष्टि की और अपने सम्मुख दो पहाड़ी पुरुषों को आते हुये देखा जो मेरे समीप आये। अपने काश सम्भ से (?) मुझ को प्रणाम करके उन्होंने अपने साथ घर जाने के लिये मुझे बुलाया और कहा, "आओ, हम तुमको वहां खाने को भी देवेंगे।" जब उन्होंने मेरे क्लेशों को सुना और मेरे वृत्त को श्रवण किया तो कहने लगे "हम तुमको सिद्धपत पर भी जो एक तीर्थस्थान है, पहुँचा देवेंगे। परन्तु उनका मुझको यह सच कहना अच्छा प्रतीत न हुआ। मैंने अस्वीकार किया और कहा "महाराज, शोक! मैं आपकी यह सब कृपा स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि मुझ में चलने की किंचित् शक्ति नहीं है।" यद्यपि उन्होंने मुझको बहुत आग्रह पूर्वक बुलाया और आने के लिये अत्यधिक अनुरोध किया, तथापि मैं वहीं अपने पांव जमाये खड़ा रहा और उनकी आज्ञा वा इच्छानुकूल मैं उनके पीछे चलने का साहस न कर सका। मैंने उनसे कह दिया कि यहां से हिलने का प्रयत्न करने की अपेक्षा मैं मर जाना उत्तम समझता हूँ। ऐसा कह कर मैंने उनकी बातों की ओर ध्यान करना भी बंद कर दिया अर्थात् पुनः उन्हें न सुना। उस समय मेरे मन में विचार आता था कि उत्तम होता यदि मैं लौट जाता और अपने पाठ को स्थिर रखता। इतने में वे दोनों सज्जन वहां से चले गये और कुछ ही काल में पर्वतों में लुप्त हो गये।

वहां जब मुझे शांति प्राप्त हुई तो मैं भी आगे को चला और कुछ काल वसुधारा (प्रसिद्ध तीर्थ व यात्रा स्थान) पर विश्राम करके माना ग्राम के निकटवर्ती प्रदेश में होता हुआ उसी सायं लगभग आठ बजे बद्रीनारायण जा पहुंचा। मुझे देख कर रावलजी और उनके साथी जो घबराये हुए थे, विस्मय प्रकाश पूर्वक पूछने लगे—"आज सारा दिन तुम कहाँ रहे?" तब मैंने सब वृत्तान्त क्रमबद्ध सुनाया। उस रात्रि कुछ आहार करके जिससे मेरी शक्ति लौटती हुई जान पड़ी, मैं सो गया। दूसरे दिन प्रातः शीघ्र ही उठा और रावलजी से आगे जाने की आज्ञा मांगी। और अपनी यात्रा से लौटता हुआ रामपुर की ओर चल पड़ा। उस सायं चलता-चलता एक योगी के घर पहुंचा। वह बड़ा तपस्वी था। रात्रि उसी के घर काटी। वह पुरुष जीवित ऋषि और साधुओं में उच्च कोटि के ऋषि होने का गौरव रखता था। धार्मिक विषयों पर बहुत काल तक उसका मेरा वार्तालाप हुआ। अपने संकल्पों को पहले से अधिक दृढ़ करके मैं आगामी दिन प्रातः उठते ही आगे को चल दिया। कई वनों और पर्वतों से होता हुआ चिलका घाटी से उतर कर मैं अन्ततः रामपुर पहुंच गया। वहां पहुंच कर मैने प्रसिद्ध रामगिरि के स्थान पर निवास किया। यह पुरुष पवित्राचार और आध्यात्मिक जीवन के कारण अतिप्रसिद्ध था। मैंने उसको विचित्र प्रकृति का पुरुष पाया। अर्थात् वह सोता नहीं था, वरन् सारी-सारी रातें उच्चस्वर

से बातें करने में व्यतीत करता। वह बातें प्रकट में अपने साथ करता हुआ प्रतीत होता था। प्राय: हमने उच्च स्वर से चीख मारते हुये उसे सुना। पुन: कई वार रोते हुये और चीख मारते हुये सुना। पर वस्तुत: जब उठ कर देखा तो उसके कमरे में उसके अतिरिक्त और कोई पुरुष दिखाई न दिया। मैं ऐसी वार्ता से अत्यन्त विस्मित हुआ। जब मैंने उसके चेलों और शिष्यों से पूछा तो उन विचारों ने केवल यही उत्तर दिया कि ऐसी इनकी प्रकृति ही है।'' पर मुझे यह कोई न बता सका कि इसका क्या रहस्य है। अन्त में स्वयं जब मैंने उस साधु से कई वार एकान्त में चर्चा की तो मुझे ज्ञात हो गया कि वह क्या बात थी। इस प्रकार मैं इस निश्चय करने के योग्य हो गया कि अभी वह जो कुछ करता है वह पूरी-पूरी योग विद्या का फल नहीं है, प्रत्युत पूरी में अभी उसे न्यूनता है और यह वह वस्तु नहीं कि जिसकी मुझे जिज्ञासा है। यह पूरा योगी नहीं यद्यपि योग में कुछ गति रखता है।

उससे चलकर मैं काशीपुर गया। वहां से द्रोणसागर जा पहुंचा। वहीं मैंने सारा शरद् ऋतु काटा। हिमालय पर्वत पर पहुंच कर देह त्याग करना चाहिये, ऐसी इच्छा हुई। परन्तु मन में यह विचार आ गया कि ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् देह छोड़ना चाहिये। अत: वहां से मुरादाबाद होता हुआ सम्भल आ पहुँचा। वहां से गढ़मुक्तेश्वर से होते हुये पुन: मैं गंगा तट पर आ निकला। उस समय अन्य धार्मिक पुस्तकों के अतिरिक्त मेरे पास निम्न लिखित पुस्तकें भी थीं। शिव संध्या, हठ योग प्रदीपिका, केशाराणि संगीत (?) प्राय: मैं इन्हीं पुस्तकों को यात्रा में पढ़ा करता था। उनमें से कई पुस्तकों का विषय नाड़ी चक्र था। पर उनमें इस विषय का ऐसा लम्बा चौड़ा विवरण था कि पुरुष पढ़ता-पढ़ता थक जाता। मैं उन्हें कभी भी पूर्णतया अपनी बुद्धि में न ला सका और न ही समझकर स्मरण कर सका। अत: मुझे विचार हुआ कि न जाने ये सत्य भी हैं वा नहीं। ऐसा संदेह होता ही गया, यद्यपि मैं अपने संशय मिटाने का यत्न करता रहा। परन्तु वह संदेह दूर न हुये और न ही उनके दूर करने का कोई अवसर प्राप्त हुआ।

एक दिन दैव संयोग से एक शव मुझे नदी में बहता हुआ मिला। तब समुचित अवसर प्राप्त हुआ कि मैं उसकी परीक्षा करता और अपने मन में उन पुस्तकों के सम्बन्ध में जो विचार उत्पन्न हो चुके थे, उनका

निर्णय करता। सो उन पुस्तकों को जो मेरे पास थीं, समीप ही एक ओर रख, वस्त्रों को ऊपर उठा मैं नदी के भीतर गया और शीघ्र वहां जा शव को पकड़ तट पर आया। मैंने तीक्ष्ण चाकू से जैसा हो सका उसे यथायोग्य काटना प्रारम्भ किया और हृदय को उसमें से निकाल लिया और ध्यानपूर्वक देख परीक्षा की। अब पुस्तकोल्लिखित वर्णन की उससे तुलना करने लगा। ऐसे ही शिर और ग्रीवा के अंगों को काट कर सामने रक्खा। यह निश्चय करके कि दोनों अर्थात् पुस्तक और शव लेश मात्र भी परस्पर नहीं मिलते, मैंने पुस्तकों को फाड़कर उनके टुकड़े कर डाले और शव को फेंक साथ ही पुस्तकों के टुकड़ों को भी नदी में फेंक दिया। उसी समय से शनै: शनै: मैं यह परिणाम निकालता गया, कि वेदों, उपनिषदों, पातञ्जल और सांख्यशास्त्र के अतिरिक्त अन्य समस्त पुस्तकें जो विज्ञान और विद्या पर लिखी गयीं मिथ्या और अशुद्ध हैं। ऐसे ही कुछ दिन और गंगा तीर पर विचरते हुये फर्रूखाबाद पहुंचा। और शृंगीराम पुर से होकर छावनी की पूर्व दिशा वाली सड़क से कानपुर जाने वाला था, जब संवत् १९१२ विक्रम समाप्त हुआ।

१९१३ वि० अगले पांच मास में कानपुर वा प्रयाग के मध्यवर्ती अनेक प्रसिद्ध स्थान मैंने देखे। भाद्रपद के प्रारम्भ में मिर्जापुर पहुंचा। वहां एक मास से अधिक विंध्याचल अशोलजी के मंदिर में निवास किया। असूज के आरम्भ में काशी पहुंचा। वहां जाके मैं उस गुफा में ठहरा जो वरणा और गंगा के संगम पर है। और जो उस समय भवानन्द सरस्वती के अधिकार में थी। वहां पर कई शास्त्रियों अर्थात् काकाराम, राजाराम आदि से मेरा परिचय हुआ परन्तु वहां केवल १२ ही दिन रहा।

तत्पश्चात् जिस वस्तु की खोज में था, उसके अर्थ आगे को चल दिया और असूज सुदि २ सं० १९१३ को दुर्गाकुण्ड के मंदिर पर जो चण्डालगढ़ में है, पहुंचा। वहां दस दिन व्यतीत किये। यहां मैंने चावल खाने सर्वथा छोड़ दिये और केवल दूध पर अपना निर्वाह करके दिन-रात योग विद्या के अध्ययन और अभ्यास में तत्पर रहा। दौर्भाग्यवश वहां मुझे एक बड़ा दोष लग गया, अर्थात् भांग पीने का स्वभाव हो गया। सो कई वार उसके प्रभाव से मैं सर्वथा बेसुध हो जाया करता। एक दिन मंदिर से निकल कर चण्डालगढ़ के निकटस्थ जो एक ग्राम आता था तो एक पुराना साथी मिला। ग्राम के दूसरी ओर कुछ ही दूर एक शिवालय था।

वहां जाकर मैंने रात काटी। रात्रि के समय भांग से उत्पन्न हुई मादकता के कारण जब मैं अचेत सोता था तो मैंने एक स्वप्न देखा। वह ऐसे था। मुझे विचार हुआ कि मैंने महादेव और उनकी स्त्री पार्वती को देखा। वे परस्पर वार्त्तालाप कर रहे थे और उनकी बातों का पात्र मैं था, अर्थात् मेरे ही सम्बन्ध में वे कह रहे थे। पार्वती महादेव से कहती थी ''उत्तम हो यदि दयानन्द सरस्वती का विवाह हो जावे'' परन्तु देवता इससे भेद प्रकट कर रहे थे और उनका संकेत भांग की ओर था। मैं जागा और स्वप्न पर विचार करने लगा। तब मुझे बड़ा दुःख और क्लेश हुआ। उस समय धारासार वर्षा हो रही थी। मैंने उस बरामदे में जो मन्दिर के मुख्य द्वार के सन्मुख था, विश्राम किया। वहां नन्दी वृष-देवता की एक विशाल मूर्ति खड़ी थी। अपने वस्त्र पुस्तकादि उसकी पृष्ठ पर रखकर मैं उसके पीछे बैठ गया और निज विचार में निमग्न हुआ। सहसा नन्दी मूर्ति के भीतर दृष्टिपात करने पर मुझे विदित हुआ कि एक मनुष्य उसमें छिपा हुआ है। मैंने अपना हाथ उसकी ओर फैलाया। इससे वह अति भयभीत हुआ, क्योंकि मैंने देखा कि उसने तत्काल छलांग मारी और छलांग मारते ही वेग से ग्राम की ओर भागा। तब उसके जाने पर मैं उस ही मूर्ति के भीतर बैठ गया और अवशिष्ट रात्रि भर वहां सोता रहा। प्रातःकाल एक वृद्धा वहां आई। उसने वृष देवता की पूजा की, जिस अवस्था में कि मैं भी उसके अन्दर ही बैठा हुआ था। कुछ देर पीछे वह गुड़ और दही लेकर लौटी। मेरी पूजा करके और भ्रान्ति से मुझे ही देवता समझकर उसने कहा ''आप इसे ग्रहण कीजिये और इसमें से कुछ खाइये।'' मैंने क्षुधार्त्त होने के कारण वह सब खा लिया। दही क्योंकि बहुत खट्टा था, अतः भांग की मादकता के दूर करने में एक अच्छा निदान हो गया। उससे मादकता जाती रही ओर मुझे बहुत आराम प्रतीत हुआ।

चैत्र १९१४ वहां से आगे चला और वह मार्ग पकड़ा कि जिस ओर पर्वत थे और जहां से नर्मदा निकलती है, अर्थात् नर्मदा के स्रोत की ओर यात्रा आरम्भ की। मैंने कभी एक वार भी किसी से मार्ग नहीं पूछा, प्रत्युत दक्षिण की ओर यात्रा करता हुआ चला गया। शीघ्र ही मैं एक ऐसे उजाड़, निर्जन स्थान पर पहुंच गया, जहां चारों ओर बहुत घने वन और जंगल थे। वहां जंगल में अनियमित दूरी पर विना क्रम झाड़ियों के मध्य में कई स्थानों पर मलिन और उजाड़ झोपड़ियां थीं। कहीं-कहीं पृथक्-पृथक् ठीक

झोंपड़ियां भी दृष्टिगोचर होती थीं। उन झोपड़ियों में से एक पर मैंने किञ्चित् दुग्धपान किया और आगे की ओर चल दिया। परन्तु इसके आगे लगभग पौन कोस चलकर मैं पुनः एक ऐसे ही स्थान पर पहुंचा जहां कोई प्रसिद्ध मार्ग आदि दिखाई न देता था। अब मेरे लिये यही उचित प्रतीत होता था कि उन छोटे-छोटे मार्गों में से (जिन्हें मैं न जानता था कि कहां जाते हैं।) कोई एक चुनूं और उस ओर चल दूं। सुतरां मैं शीघ्र ही एक निर्जन वन में प्रविष्ट हुआ। उस जंगल में बेरियों के बहुत वृक्ष थे। परन्तु घास इतना घना और लम्बा था कि मार्ग सर्वथा दृष्टिगोचर न होता था। वहां मेरा सामना एक बड़े काले रीछ से हुआ। वह पशु बड़े वेग और उच्च स्वर से चींखा। चिंघाड़ कर अपनी पिछली टाँगों पर खड़ा हो मुझे खाने के निमित्त उसने अपना मुख खोला। कुछ काल तक मैं निष्क्रिय स्तब्धवत् खड़ा रहा। पश्चात् शनैः शनैः मैंने अपने सोटे को उसकी ओर उठाया। उससे भयभीत हो वह उलटे पाँव लौट गया। उसकी चिंघाड़ वा गर्ज ऐसी बलपूर्ण थी कि ग्राम वाले जो मुझे अभी मिले थे, दूर से उसका शब्द सुन कर लठ ले शिकारी कुत्तों सहित मेरी रक्षार्थ वहां आये। उन्होंने मुझे यह समझाने का परिश्रम किया कि मैं उनके साथ चलूं। वे बोले ''इस जंगल में यदि तुम कुछ भी आगे बढ़ोगे तो तुम्हें संकटों का सामना करना पड़ेगा। पर्वत या वन में बहुत से भयानक क्रूर और हिंसक जंगली पशु अर्थात् रीछ, हाथी, शेर आदि तुमको मिलेंगे।'' मैंने उनसे निवेदन किया कि मैं कुशल मंगल और रक्षित हूँ। मेरे मन में तो यही सोच थी किसी प्रकार नर्मदा का स्रोत देखूं। अतः समस्त भय और कष्ट मुझे अपने संकल्प से न रोक सकते थे। जब उन्होंने देखा कि उनकी भयानक बातें मेरे लिये कोई भय उत्पन्न नहीं करतीं और मैं अपने संकल्प में पक्का हूँ तो उन्होंने मुझे एक दण्ड दिया जो मेरे सोटे से बड़ा था और जिससे मैं अपनी रक्षा करूं। परन्तु मैंने उस दण्ड को तुरन्त अपने हाथ से फेंक दिया।

उस दिन जब तक कि संसार में चारों ओर अन्धकार न छाया मैं बराबर यात्रा करता हुआ चला गया। कई घण्टों तक मानव बस्ती का मुझे कोई चिह्न न मिला। दूर-दूर तक कोई ग्राम दिखाई न दिया। कोई झोपड़ी भी तो दृष्टिगोचर न होती थी और न ही कोई मनुष्य जाति मेरी आँखों के सामने आई। पर वह वस्तुएँ जो प्रायः मेरे मार्ग में आई, वृक्ष थे। उनमें

से अनेक टूटे पड़े थे कि जिनकी जड़ों को मस्त हस्तियों ने तोड़ और उखेड़ कर फेंक दिया था। इससे कुछ दूर आगे मुझे एक विशाल विकट वन दिखाई दिया। उसमें प्रवेश करना कठिन था अर्थात् बेर आदि कांटे वाले वृक्ष इतने घने लगे हुए थे कि उनके भीतर से निकल कर वन में पहुंचना अति दुस्तर प्रत्युत असम्भव प्रतीत होता था। प्रथम तो मुझे उसके भीतर से निकलना असम्भव दिखाई दिया, परन्तु पीछे पेट के बल और जानू के सहारे मैं शनैःशनैः सर्पवत् उन वृक्षों में से निकला। और इस प्रकार उस बाधा और कठिनाई पर विजय प्राप्त की। इस दिग्विजय के प्राप्त करने में मुझ को अपने शरीर के मांस को भी भेंट करना पड़ा। मैं इसमें से घायल और अधमरा होकर निकला। उस समय सर्वत्र अन्धकार छाया हुआ था। तम के अतिरिक्त कुछ दृष्टिगोचर न होता था। यद्यपि मार्ग रुका हुआ था और दिखाई न देता था तो भी मैं आगे बढ़ने के विचार को तोड़ न सकता था। मैं इस आशा में था कि कोई मार्ग निकल ही आवेगा। अतएव निरन्तर आगे को चलता गया और बढ़ता रहा। अन्त को मैं एक ऐसे भयानक स्थान में पहुंचा कि जहां चारों ओर उच्च शैल और पर्वत थे कि जिन पर घनी औषधियाँ और वनस्पतियाँ उगी हुई थीं। पर इतना अवश्य था कि मनुष्यवास के वहां कुछ-कुछ चिह्न और संकेत पाये जाते थे। अस्तु। शीघ्र ही मुझे कई झोंपड़ियां और कुटियायें दिखाई पड़ीं। उनके चारों ओर गोबर के ढ़ेर लगे हुये थे। निकट ही स्वच्छ जल की एक छोटी सी नदी थी। उसके तीर पर बहुत सी बकरियां चर रही थीं। झोंपड़ियों और टूटे-फूटे घरों के द्वारों और छिद्रों में से टिमटिमाता हुआ प्रकाश दिखाई देता था जो जाते हुए पथिक को स्वागत और बधाई के शब्द सुनाता हुआ प्रतीत होता था। मैंने वहाँ एक विशाल वृक्ष के नीचे जो एक झोंपड़ी के ऊपर फैला हुआ था रात्रि व्यतीत की। प्रातः उठकर मैं अपने क्षत पांव, हाथ, और दण्ड को नदी जल से धोकर संध्या वा प्रार्थना के लिये बैठने को ही था कि किसी जंगली पशु की गर्ज मेरे कर्णगोचर हुई। वह ध्वनि 'टमटम' का उच्च स्वर था। कुछ काल पश्चात् मैंने एक बड़ी सवारी या जन समूह को आते हुये देखा। उसमें बहुत से स्त्री-पुरुष और बालक थे उनके पीछे बहुत सी गौऐं और बकरियाँ थीं। वे एक झोंपड़ी या घर से निकले। अनुमान है कि किसी धार्मिक त्यौहार की रस्में पूरी करने के लिये जो रात्रि को हुआ, आये थे। जब उन्होंने मेरी

ओर देखा और मुझे उस स्थान में एक अजान पुरुष जाना तो बहुत से मेरे चारों ओर एकत्र हुये। अन्ततः एक वृद्ध पुरुष ने आगे बढ़कर मुझ से पूछा तुम कहां से आये हो? मैंने उन सबसे कहा कि मैं काशी से आया हूँ और अब नर्मदा नदी के स्रोत की ओर यात्रा के लिये जा रहा हूँ। इतना पूछ कर वे सब मुझे अपनी उपासना करने में निमग्न छोड़ कर चले गये। उनके जाने के आधा घण्टा पश्चात् उनका एक अध्यक्ष दो पर्वतीय पुरुषों सहित मेरे पास आया और एक दिशा में बैठ गया। वह वस्तुतः उन सबकी ओर से प्रतिनिधि बन कर मुझे अपनी झोंपड़ी में बुलाने को आया था, परन्तु पूर्ववत् मैंने अब भी उनका निमन्त्रण अस्वीकार किया क्योंकि वे सब मूर्तिपूजक थे। तब उसने अपने साथ वालों को मेरे समीप अग्नि प्रज्वलित करने का आदेश किया। और दो पुरुषों को स्थापित किया कि रात्रि भर मेरी रक्षा करते हुए जागते रहें। जब उसने मुझसे मेरे भोजन के सम्बन्ध में पूछा और मैंने उसे बताया कि मैं केवल दूध पीकर निर्वाह करता हूँ तो उस दयावान् अध्यक्ष एवं नेता ने मुझ से मेरा तूंबा मांगा। उसे लेकर वह अपनी कुटी को गया और वहां से उसे दूध से भर कर मेरे पास भेज दिया। मैंने उस रात्रि उसमें से थोड़ा सा दूध पिया। वह फिर मुझे उन दोनों पहरा देने वालों के ध्यान में छोड़ कर लौट गया। उस रात्रि मैं घोर निद्रा में सोया और सूर्योदय तक सोया रहा। तत्पश्चात् अपने संध्या आदि से अवकाश प्राप्त करके मैं उठा और यात्रा के लिये चला।

दयानन्द सरस्वती

जन्मचरित्र के नमूने के पृष्ठ

मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती संक्षेप से अपना जन्मचरित्र लिखता हूँ

संगठनसूक्त

ओं संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर॥ १॥

हे प्रभो! तुम शक्तिशाली हो बनाते सृष्टि को।
वेद सब गाते तुम्हें हैं कीजिए धन-वृष्टि को॥

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥ २

प्रेम से मिलकर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजों की भाँति तुम कर्त्तव्य के मानी बनो॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥ ३॥

हों विचार समान सबके चित्त-मन सब एक हों।
ज्ञान देता हूँ बराबर भोग्य पा सब नेक हों॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ ४॥

हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा।
मन भरे हों प्रेम से जिससे बढ़े सुख-सम्पदा॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

❑❑

आर्यसमाज के नियमोद्देश्य

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ-विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य-पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३. वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिएँ।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।